आमने-सामने

जायज़ या नाजायज़?

अपने प्रभावशाली राजनेता-पिता के नकारने के विरूद्ध अपने पैतृत्व को साबित करने में रोहित शेखर को मिली सफलता ने तमाम महिलाओं और उनके "नाजायज़" कहलाए जाने वाले बच्चों के लिए एक उम्मीद जगाई है। जैसा कि शेखर कहते हैं- "बच्चे नाजायज़ नहीं होते, बाप नाजायज़ होते हैं। अपनी सत्ता का रोब डालकर ये पुरुष मजबूर औरतों को शोषण करते हैं, मासूम बनकर नैतिकता पर भाषण देते हैं और कानून भी इन्ही पुरुषों का साथ देता है।"

शेखर की जीत *भारतीय प्रमाण कानून 1872* की धारा 112 में निहित वैधता की "धारणा" को चुनौती देती है। इस खण्ड का उद्देश्य था गुज़ारा-भत्ता मांगने वाली औरत के ख़िलाफ़ जारकर्म का इल्ज़ाम लगाकर अपने पैतृत्व को नकारने से पुरुषों को रोकना। इस कानूनी धारणा के अनुसार विवाह के दौरान पैदा होने वाली संतान को जायज़ माना जाता है। संतान-पत्नी की ज़िम्मेदारी से विमुख होने वाले पिता को ठोस प्रमाण प्रस्तुत करने की ज़रूरत होती है।

अदालतें नियमित रूप से औरतों व उनके बच्चों को अपने जैविक पिता के ख़िलाफ़ अधिकार हासिल करने से रोकती रही हैं- संतान का जन्म वैवाहिक जीवन के दौरान हुआ था- फिर भी अदालत पैतृत्व जांच का आदेश पारित नहीं करती। एन.डी. तिवारी के विरुद्ध फ़ैसले ने इन औरतों की मांग को एक ठोस आधार दिया है। इससे उन्हें नैतिकता के नाम पर नकारे जाने वाले दावों को अदालत में साबित करने का मौका मिलेगा। इस पूरे विवाद में प्रमुख प्रश्न है हिंदू विवाह का स्वरूप जिसे *हिंदू विवाह कानून 1955* के अनुसार एकविवाह प्रथा पर आधारित माना गया है। इस कानून के पूर्व लम्बे समय तक किसी पुरुष के साथ रिश्ते में रहने वाली महिलाओं को पत्नी का दर्जा मिलता था और वे स्मृति और रिवाजी कानून के तहत अपने अधिकारों की मांग कर सकती थीं। इस नए कानून के बनते ही ये औरतें 'रखैल', 'उप पत्नी' और 'प्रेमिका' बनकर रह गईं जिनके कोई भी वैध अधिकार नहीं थे। *मुस्लिम कानून* में ऐसा नहीं था- वहां बहुविवाह के चलते अनेक पत्नियों को समान अधिकार मुहय्या थे। हिन्दू महिला का अधिकार इतना कमज़ोर था कि अदालत में पत्नी का जायज़ अधिकार साबित करने के लिए दोनों महिलाएं किसी भी हद तक जा सकती थीं।

2004 में *रमेशचन्द्र रामप्रतापजी डागा बनाम रामेश्वरी रमेशचन्द्र डागा* के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने महिला के गुज़ारा भत्ते की मांग को जायज़ ठहराया जिसे उसके पति ने इस बिनाह पर नाजायज़ ठहराया था कि महिला का पिछली शादी से तलाक़ नहीं हुआ है और उसकी बेटी नाजायज़ है। अदालत ने महिला के अधिकार सुरक्षित करते हुए पति को पैतृत्व नकारने का दोषी ठहराया। यह भी स्वीकारा गया कि 1955 से पहले हिन्दू समाज में भी अनेक पत्नियां रखने का चलन था। यह निर्णय इस सच की भी मूक स्वीकृति थी कि *हिन्दू विवाह कानून* बनने के बाद भी वास्तविक हालात में कुछ खास फ़र्क़ नहीं आया है।

हालांकि *हिन्दू कानून* के अनुसार इस तरह के संबंध अवैध होते हैं पर अदालत ने यह माना कि ये रिश्ते "नाजायज़" नहीं हैं और इन संबंधों में रहने वाली महिलाओं को गुज़ारा भत्ता पाने का हक़ है।

रोहित शेखर के मामले की सुनवाई के बाद विवाह संबंधों के बाहर संतान पैदा करने वाली महिलाओं की स्थिति बेहतर हुई है। अब वे अपने बच्चे का पैतृत्व साबित करके गुज़ारा भत्ता पा

सकती हैं। परन्तु अनीता आडवाणी जैसी महिलाओं का क्या होगा? अनीता का दावा है कि वह राजेश खन्ना के साथ पिछले दस सालों से रह रही थीं, जबकि अलग रह रही पत्नी डिम्पल कपाड़िया से राजेश खन्ना की वैध शादी में कानूनी तलाक़ नहीं हुआ था। महज एक कानूनी कागज़ के आधार पर अनीता को राजेश खन्ना की अंतिम क्रियाओं में शामिल नहीं होने दिया गया।

घरेलू हिंसा कानून ने इस तरह के संबंधों में रह रही औरतों के सम्मान और हक़ के लिए एक नई परिभाषा स्थापित की है- "विवाह के स्वभाव वाले संबंध"। सबने सोचा कि इस नई परिभाषा के मदद से रखैल के नाम से जानी जाने वाली औरतें लिव-इन (सह-रिहाइशी) पार्टनर बन जाएंगी। पर 2010 में न्यायमूर्ति मार्कण्डे काट्जू ने महिला की गुज़ारा भत्ता पाने की मांग को खारिज करके आशाओं पर पानी फेर दिया। विवाहित पुरुषों के साथ विवाह जैसे संबंधों में रहने वाली महिला एक बार फिर 'रखैल' बन गई। इस फ़ैसले ने सकारात्मक निणर्यों और *धारा 125 फौज़दारी कार्यवाहिक कोड* की पुनर्व्यावस्था को नज़रअंदाज़ कर दिया।

हमारी हिन्दू सामाजिक परम्परा में "एकविवाह" प्रथा जिसे अनेक न्यायाधीश अपने फ़ैसले में मजबूर औरतों के विरुद्ध इस्तेमाल कर रहे हैं कभी भी हिन्दू सामाजिक रीति का हिस्सा नहीं रही है। राजेश खन्ना/अनीता आडवाणी के अलावा अनेकों ऐसे उदाहरण हमारे समाज में हैं जहां अरक्षित औरतों ने सत्ताधारी पुरुषों पर भरोसा किया है और फिर दुत्कार और धोखे खाएं हैं। धीरे धीरे ये सभी कहानियां सामने आ रही हैं जिनमें राजनेता, पुलिस अफ़सर, सरकारी मुलाज़िम और धनाढ्य उद्योगपति शामिल हैं।

हमारी अदालतों को महिलाओं व बच्चों के मूल अधिकार मुख्यतः जीवन के अधिकार की रक्षा करते समय इस सड़ती-बिखरती "एकविवाह" हिन्दू विवाह प्रथा का भी पुनर्निरीक्षण करना होगा जिसमें संविधान के खण्ड 21 में दर्ज सम्मानयुक्त जीवन जीने का अधिकार भी शामिल है।

साभारः ***फ्लेविया एग्निस*** *इण्डियन एक्सप्रेस, अगस्त 2, 2012*